इकाई 4 नए वर्गों का उद्गमन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 नए वर्गों के उदय के कारण

4.3 एक नए वातावरण में पुराने वर्ग

4.4 नए वर्ग

- 4.4.1 ज़मीदार
- 4.4.2 काश्तकार
- 4.4.3 भूमिधारी
- 4.4.4 किसान आंदोलन, मुख्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ
- 4.4.5 आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग
- 4.4.6 पूँजीपति वर्ग
- 4.4.7 कामगार वर्ग

4.5 सारांश

4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पाएँगे उन नए वर्गों का उदय जो औपनिवेशिक काल में उद्गमित हुए। इसके अध्ययन के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- नए वर्गों के उदय के कारण समझ सकें;
- पुराने वर्गों की परिस्थितियाँ समझ सकें; तथा
- इन वर्गों और शेष अन्य खण्डों में दी गई इकाइयों के बीच एक संबंध स्थापित कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

अंग्रेजी शासन के आगमन के बाद भारतीय समाज ने अनेक वर्गों का उद्गमन होते देखा। ग्रामीण क्षेत्रों में, ज़मीदारों, काश्तकारों, भूमिधारियों, साहूकारों, कृषि-श्रमिकों, आदि के वर्गों का उद्गमन हुआ और शहरी क्षेत्रों में, पूँजीपतियों, कामगारों, लघु उद्यमियों, आदि के वर्गों का आविर्भाव हुआ। एक शिक्षित मध्य वर्ग का भी उद्गमन हुआ। धीरे-धीरे इन वर्गों ने राष्ट्रीय स्वरूप अर्जित कर लिया, जो उनके द्वारा अखिल भारतीय संगठन के रूप में व्यक्त हुआ। पूँजीपति वर्ग ने भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मण्डल-संघ बनाया। कर्मचारियों ने अखिल भारतीय ट्रेडयूनियन कांग्रेस का निर्माण किया। भूमिधारियों, काश्तकारों और कृषि-श्रमिकों ने अखिल भारतीय किसान सभा का निर्माण किया। अंग्रेजों द्वारा राज्य की प्राय: असंबद्ध स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं और समूहों में से निकाली गई एक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और राज्य-व्यवस्था के सृजन ने एक अखिल भारतीय स्तर पर संगठित होने और संघर्ष करने के लिए नए वर्गों के बीच प्रेरणा जगाई। पूर्व-ब्रिटिश भारत की

पहचान थी एक अखिल भारतीय अर्थव्यवस्था और एक एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था का अभाव। यही कारण था कि यहाँ एक भी अखिल भारतीय वर्ग नहीं था। इन नए वर्गों ने अपने वर्गगत हितों को बढ़ावा देने के लिए संघर्ष करना शुरू कर दिया। इन वर्गों के प्रबुद्ध प्रवर्गों ने अंग्रेजी शासन के सही स्वभाव को समझना शुरू कर दिया, वे भारत में ब्रिटिश हितों के साथ भारतीय लोगों के हितों के टकराव को समझ सकते थे। उन्हें यह भी अहसास हो गया कि भारतीय समाज की सामान्य सम्पन्नता उनके वर्गगत हितों को प्रोत्साहन देने हेतु भी कहीं बेहतर परिस्थितियाँ पैदाकर सकती है। उन्होंने यह भी महसूस किया कि यह सामान्य सम्पन्नता केवल आज़ादी के साथ ही आ सकती है। इस बोध ने प्रगामी वर्गों को संयुक्त राष्ट्रवादी स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल होने के लिए उत्तेजित किया।

नए वर्गों के उद्‌गमन ने सभी जगह और सभी समुदायों के बीच किसी एकरूप प्रतिमान का अनुसरण नहीं किया। नए वर्गों के उदय को प्रेरित करती यह नई अर्थव्यवस्था उन क्षेत्रों में लागू की गई, जो ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आते थे। भारत पर विजय एक ही झटके में नहीं मिल गई। यह चरणों में हासिल की गई। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत देश के पहले आने वाले हिस्से में नए वर्गों का उदय पहले दिखाई दिया। प्रथमत: बंगाल ने नए वर्गों - ज़मींदार और काश्तकार - को प्रवेश-प्रवेश दिया क्योंकि ब्रिटिश विजय बंगाल से ही शुरू हुई और यहीं प्रथमत: उस स्थायी बंदोबस्त को लागू किया गया, जिसने ज़मींदारों और काश्तकारों को जन्म दिया। वे औद्योगिक उद्यम भी प्रथमत: बंगाल और बंबई क्षेत्रों में ही स्थापित किए गए जिनसे उद्योगपतियों और कर्मचारियों के वर्ग का उदय हुआ। इन क्षेत्रों में व्यवसायिक और शिक्षित मध्य वर्ग भी अन्य क्षेत्रों के मुकाबले काफी आगे निकल गए। एक नए प्रशासनिक तंत्र और आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के लागू होने से ऐसा हुआ था। धीरे-धीरे पूरा ही देश ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आ गया। अत: ब्रिटिश द्वारा लागू की गई आर्थिक व्यवस्था, प्रशासनिक तंत्र और आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पूरे ही देश पर छा गए। इस प्रकार नए वर्गों का उद्‌गमन बन गया एक देश-व्यापी अद्‌भुत घटना।

विभिन्न समुदायों के बीच भी नए सामाजिक वर्गों का उद्‌गमन एकरूप नहीं था। बनियों और पारसियों ने ही प्रथमत: वाणिज्य और बैंकिंग में रुचि दिखाई इसीलिए वे पूँजीपति वर्ग में फले-फूले। इसी प्रकार, अंग्रेजों द्वारा आरंभ की गई आधुनिक शिक्षा ग्रहण करने वाले प्रथम ब्राह्मण ही थे। इसी कारण उन्होंने ही व हद्‌त: व्यवसायियों और बुद्धिजीवियों का वर्ग निर्माण किया। मुस्लिमों में नए वर्गों का उद्‌गमन देर से दिखाई दिया क्योंकि वे व्यापार और वाणिज्य से दूर रहते थे व शिक्षा की आधुनिक प्रणाली को शंका की दृष्टि से देखते थे और वे उत्तरी भारत में रहते थे, जो ब्रिटिश अधीनता के अंतर्गत काफी बाद के चरण में आया। बंगाल में मुस्लिम जनसंख्या का बहुल था।

4.2 नए-वर्गों के उदय के कारण

नए भूमि संबंध के पदार्पण की भाँति आर्थिक व्यवस्था का परिवर्तन होना, पूँजीपति जगत् द्वारा वाणिज्यिक दोहन हेतु भारतीय समाज का विवृत्तन, एक नई प्रशासनिक व्यवस्था और एक आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का प्रवेश, तथा आधुनिक उद्योगों की स्थापना ही नए सामाजिक वर्गों के उद्‌गमन हेतु व हद्‌त: उत्तरदायी कारक थे। स्थायी और रैयतवाड़ी व्यवस्थाओं द्वारा भूमि में निजी सम्पत्ति के सृजन ने वृहद् सम्पदा-स्वामियों, ज़मींदारों और भूमिधारियों के रूप में नए वर्गों को जन्म दिया। काश्तकारों और सह-काश्तकारों का वर्ग भूमि-पट्टाधृति अधिकार दिए जाने के साथ ही जन्मा। भूमि में निजी सम्पत्ति का अधिकार और भूमि पर काम करने हेतु श्रमिक रखने का अधिकार के फलस्वरूप अन्यत्रवासी भूमि-स्वामी और कृषि-श्रमिक जैसे वर्गों का जन्म हुआ। यहाँ एक वर्ग साहूकारों का भी उद्‌गमित हुआ।

विपणन शक्तियों के लिए नई अर्थव्यवस्था के विवर्त्तन ने भी नए वर्गों को जन्म दिया। ब्रिटिश शासन के तहत उत्पादन, औद्योगिक और कृषीय दोनों बाज़ार के लिए होने लगा। इससे उन लोगों के लिए अवसर पैदा हुआ जिनकी भूमिका भारत के भीतर-बाहर माल को आयात व निर्यात करने की थी। इन लोगों को व्यापारियों के रूप में जाना जाने लगा। ब्रिटिश-पूर्व भारत में भी व्यापारियों का यह वर्ग विद्यमान था क्योंकि अंत: और बाह्य दोनों प्रकार का व्यापार अस्तित्व में तो था परन्तु यह स्तर और आकार में बहुत छोटा था। इस वर्ग का समाज में पर्याप्त प्रभाव नहीं था। व्यापारिक वर्ग, ज़मींदार और व्यावसायिक वर्गों के बीच अपेक्षाकृत धनवान का एक प्रवर्ग के हाथों में लाभ-संचय ने भारतीयों के स्वामित्व वाले वस्त्रादि, खनन व अन्य उद्योगों के उदय हेतु पूँजी-निर्माण किया। इससे देशज पूँजीपति वर्ग का उद्गमन हुआ। इस प्रकार पूरी तरह से नए वर्ग दृष्टिगोचर हुए; एक, औद्योगिक पूँजीपति जो मिलों, खानों व अन्य पूँजीपति उद्यमों के स्वामी थे; दो, वे कर्मचारी जो कारखानों, मिलों, रेलों में व बाग़ानों में काम करते थे।

अंग्रेजों द्वारा लायी गई नई सामाजिक, आर्थिक व राज्य व्यवस्था को भारतीयों के एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता थी जो विधि, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, अर्थ आदि व्यावसायिक क्षेत्रों में आधुनिक शिक्षा-प्राप्त हो। पूरे देश में आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का समावेश इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया। व्यवसायिकों का यह सदा-प्रसरणशील वर्ग इस नई सामाजिक-आर्थिक व प्रशासनिक व्यवस्था की ही रचना था। यह व्यवसायी-वर्ग ब्रिटिश-पूर्व भारत में था ही नहीं। इन व्यवसायी-वर्गों ने विज्ञान व कला के क्षेत्रों में आधुनिक ज्ञान अर्जित किया था। अंग्रेजों द्वारा लाई गई विधि-व्यवस्था ने उनको अवसर प्रदान किए जिन्होंने कानून की पढ़ाई की। वे जिन्होंने चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा सरकारी अस्पतालों और चिकित्सा-कॉलेजों में लगा दिए गए।

4.3 एक नए वातावरण में पुराने वर्ग

भारत ब्रिटिश शासन के अंतर्गत पूँजीवादी दिशा में एक रूपांतरण से गुज़रा था किन्तु यह रूपांतरण वैसा सम्पूर्ण नहीं था जैसा कि फ्रांस, इंग्लैण्ड अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था। इसका मतलब था औद्योगिक विकास का अवरुद्धन। परिणामत: पुराने वर्गों में से कुछ कायम रहे। ग्राम्य शिल्पकारों और शहरी दस्तकारों के वर्ग ऐसे ही वर्ग थे। लेकिन वह प्रसंग जिसमें वे कार्य कर रहे थे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की वजह से बदल चुका था। ग्राम्य शिल्पकार अब पहले की तरह ग्राम-समुदाय के सेवक नहीं रहे थे। उन्होंने अपने तैयार माल को बाज़ार में भेजना शुरू कर दिया। शहरी दस्तकार जो पहले अभिजात्यों, राजाओं व धनी व्यापारियों के लिए काम करते थे, अब अपने उत्पाद बाज़ार में बेचने लगे। ब्रिटिश-पूर्व काल से एक अन्य महत्त्वपूर्ण वर्ग, जो कायम रहने में सफल हुआ, उन राजाओं का था जो भारतीय राज्यक्षेत्र के लगभग एक-तिहाई पर शासन करते थे। वे इसलिए कायम रहे क्योंकि 1857 के पश्चात् अंग्रेज अधिनहन की नीति छोड़ चुके थे क्योंकि इस वर्ष की क्रांति के दौरान राजागण सामान्यत: अंग्रेजों के प्रति वफ़ादार रहे थे। परन्तु कायम रहने के लिए उन्हें अंग्रेजों की परमोच्चसत्ता स्वीकार करनी पड़ी। इन राज्यों की सभी प्राणाधार शक्तियों सर्वोच्च ब्रिटिश शक्ति के अभिभूत थीं। रेज़ीडेन्ट्स के माध्यम से अंग्रेजों ने इन राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। इन राजसी राज्यों में आम आदमी की स्थिति दयनीय थी। लोकतांत्रिक स्वतंत्रता समाप्तप्राय थी। भूमि-राजस्व और कराधान बहुत ऊँचे थे और उगाहया गया अधिकांश राजस्व राजाओं की विलासमय जीवन-शैलियों पर खर्च किया जाता था। नई अर्थव्यवस्था के आविर्भाव ने इन राजाओं को कभी-कभी अपने राज्य-क्षेत्र से बाहर भी वाणिज्यिक, औद्योगिक व वित्तीय साहसिक कार्यों में निवेश करने का अवसर प्रदान किया। मध्यकालीन कुलीनों से रूपान्तरित हो वे अब राष्ट्रीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से जुड़े पूँजीपति बन गए थे।

4.4 नए वर्ग

4.4.1 ज़मीदार

बंगाल और बिहार में लॉर्ड कॉर्नवैलिस द्वारा किए गए 1793 के स्थायी बन्दोबस्त ने कृषक पदानुक्रम के शीर्ष पर ज़मींदार वर्ग, एक वैभवशाली वर्ग, को जन्म दिया। इस वर्ग को बनाकर अंग्रेजों का उद्देश्य भारत में अपने शासन हेतु समर्थनाधार तैयार करना था। यह अंग्रेजी शासन की स्थिरता के लिए एक राजनीतिक आवश्यकता थी। चूँकि ज़मींदार अपने अस्तित्व मात्र के लिए अंग्रेजी शासन के आभारी थे, वे उनके वफ़ादार समर्थक बन गए। बदले में अंग्रेजों ने उन्हें सरकार द्वारा आरम्भ की गई अनेक संवैधानिक योजनाओं में प्रतिनिधित्व व अन्य अनुग्रह प्रदान किए। इस वर्ग की रचना के पीछे एक अन्य मन्तव्य था आय की स्थिरता। कम्पनी के सामने निरन्तर वित्तीय संकट रहता था। बंगाल से उगाहे गए भूमि-राजस्व से कम्पनी के विस्तारवादी युद्धों का वित्त-प्रबंध करना पड़ता था; इससे बंगाल, मद्रास और बम्बई में कम्पनी की प्रतिष्ठान-लागतों का भुगतान होता था। इस धन से कम्पनी को निर्यात हेतु खरीदी गई भारतीय उपभोक्ता वस्तुओं के लिए भी भुगतान करना पड़ता था। कम्पनी के सामने समस्या यह थी कि राजस्व वसूली अनियमित थी और उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। 1793 के स्थायी बंदोबस्त में इन दोनों ही समस्याओं का हल था। इससे स्थायी आय की गारण्टी मिल गई और भूमि-राजस्व से कम्पनी की आय भी बढ़ गई। स्थायी बन्दोबस्त ने राजस्व वसूली के काम को आसान भी कर दिया। इससे पहले कम्पनी को लाखों खेतिहरों से सीधे जूझना पड़ता था। अब वे ज़मींदारों से ही वास्ता रखने लगे जो सरकार और खेतिहरों के बीच बिचौलिये बन गए थे।

ये ज़मींदार अंग्रेजों के एजेण्ट थे। सरकार को एक निश्चित राजस्व-राशि का भुगतान करने के उनके वायदे के बदले में उन्हें लाचार, आर्थिक रूप से दुर्बल किसानों से चाहे जितना लगान वसूलने का अधिकार मिल गया। अगर ये खेतिहर समय पर राजस्व नहीं चुका पाते थे उन्हें उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। किसी विवाद की स्थिति में ज़मींदारों के पास उनके पक्ष में अदालतें और सरकारी तंत्र थे। परिणामस्वरूप खेतिहरों की स्थिति ज़मींदारी वाले क्षेत्रों में बेहद खराब हो गई। कृषि पर भी दुष्प्रभाव पड़ा क्योंकि इन किसानों के पास बीज अथवा खाद पर खर्च करने को मुश्किल से ही कुछ बचता था। ये ज़मींदार कृषि सुधार के लिए कुछ भी नहीं करते थे। इन्होंने अपना राजनीतिक संगठन बना लिया, यानी, ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन। यह एक अनुदार निकाय था। यह वर्ग हमेशा लोकतंत्र-विरोधी रहा। जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस लोकतांत्रिक अधिकारों, प्रशासनिक सुधारों अथवा स्वराज के लिए लड़ रही थी और इन चीजों के लिए उसने संघर्षों को आयोजित किया, ये ज़मींदार हमेशा सरकार के पक्ष में रहे। इन वर्ग को लोकतांत्रिक संघर्षों का भय था क्योंकि ऐसे संघर्षों की सफलता से न सिर्फ उनके हितों को बल्कि उनके अस्तित्व मात्र को भी ख़तरा था। अंग्रेजों ने ज़मींदारों को राष्ट्रवाद की उठती लहर के विरुद्ध एक प्रतितोलक भार के रूप में इस्तेमाल किया।

4.4.2 काश्तकार

स्थायी बन्दोबस्त ने मात्र ज़मींदारों के वर्ग को ही जन्म नहीं दिया। इसने देश में खेतिहरों का भी एक वर्ग बना दिया। वे बेहिसाब ऊँचे लगान के अधीन थे। वे किसान जो लगान नहीं चुका पाते थे बेदखली झेलते थे, कारण बेशक उनके वश से बाहर हों। ज़मींदारी व्यवस्था खेतिहरों की आम कंगाली में फलीभूत हुई। 1859 और 1885 के बंगाल कृषक अधिनियम, जिनका उद्देश्य खेतिहरों

की स्थिति में सुधार करना था, ज्यादा कुछ नहीं दे सके और उनकी स्थिति बदतर ही होती रही। आगे चलकर ये खेतिहर राजनीतिक रूप से सचेत हो गए जो उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल व अन्य क्षेत्रों में कृषक संघों के निर्माण में व्यक्त हुआ। ये खेतिहर एन०जी० रंगा और स्वामी सहजानन्द द्वारा प्रारंभ किसान सभा के प्रभाव में भी आए। उत्तर प्रदेश में वे बाबा राम चंद द्वारा संघटित किए गए। वे केवल अंग्रेजी शासन के ही आलोचक नहीं थे, वे ज़मींदारों के हितों के प्रति उदारता दिखाने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भी आलोचना करते थे। उनकी मुख्य माँगों में शामिल थे– लगान घटाना, ज़मींदारों द्वारा वसूले जाने वाले अवैध देयों का उन्मूलन। किसान सभा ज़मींदारों और ज़मींदारी व्यवस्था का विरोध करती थी।

4.4.3 भूमिधारी

दक्षिण और दक्षिण-मध्य भारत में जहाँ रैयतबाड़ी व्यवस्था शुरू की गई, भूमिधारियों के एक वर्ग का उद्गमन हुआ। इन इलाकों में खेतिहर भू-राजस्व के अपने भुगतान के बदले में अपने भू-खण्डों के स्वामियों के रूप में पहचाने जाते थे। इस वर्ग की आम स्थिति मुख्यत: अत्यधिक भूमि-कर, जोत के अपूर्ण आकार और भारी ऋणग्रस्तता की वजह से बिगड़ी। कुछ भूमिधारियों की हालत सुधरी और वे धनी खेतिहरों की श्रेणी में आ गए लेकिन उनमें से अधिकांश दयनीय रूप से सफल हुए और दरिद्र खेतिहरों और दूरवासी भू-स्वामियों के काश्तकारों की श्रेणी में आ गए। उनमें से कुछ तो भूमि-श्रमिकों के वर्ग में ही आ गए। ये भूमिधारी काश्तकारों से आगे निकलकर राजनीतिक रूप से सचेत हो गए। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे विदेशी शासन से सीधे सम्पर्क में थे जबकि ज़मींदारी वाले क्षेत्रों में ज़मींदार सरकार और काश्तकारों के बीच मध्यस्थता करते थे। इन भूमिधारियों को अपने शत्रु, अंग्रेजी शासन, की पहचान करने में मुश्किल नहीं आयी। ये काश्तकार ज़मींदारों को शत्रु मानते थे न कि अंग्रेजी शासन को। इन काश्तकारों की यह सचेतता वर्ग-सामंजस्य की गाँधीवादी विचारधार के कारण कुण्ठित भी थी। गाँधीजी स्वराज-प्राप्ति के लिए ज़मींदारों और काश्तकारों के बीच एकता की आवश्यकता पर बल देते थे। किसान सभा के एन०जी० रंगा व सहजानन्द जैसे नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर काश्तकारों के लिए माँगों का एक कार्यक्रम निरूपित करने हेतु दवाब डाला। उनका यह भी कहना था कि कांग्रेस कुछ क्षेत्रों में काश्तकारों के हितों के विरुद्ध ज़मींदारों के साथ मिली हुई है।

बोध प्रश्न 1

नोट: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) उन कारकों को पहचानें जिनसे नए वर्गों का उदय हुआ।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अंग्रेजों ने ज़मींदार-वर्ग का निर्माण क्यों किया?

.....

.....

.....

.....

.....

3) ज़मींदारों द्वारा काश्तकारों का किस प्रकार शोषण होता था?

.....

.....

.....

.....

.....

4.4.4 किसान आंदोलन, मुख्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

फरवरी 1918 में उत्तर प्रदेश किसान सभा के संघटन ने भारत में किसान आंदोलनों के इतिहास में एक जल-संभर विकास का संकेत दिया। इस काल के आस-पास किसानों ने राजनीतिक सचेतता दर्शानी शुरू कर दी। वे अब राष्ट्रवादी संघर्षों में भाग लेने लगे। उनके संगठन अपने कार्यक्रमों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने ही नेतृत्व में उद्गमित हुए। इसका मतलब यह नहीं है कि 1918 से पूर्व कोई किसान आंदोलन हुए ही नहीं थे। वास्तव में कई हुए थे। लेकिन ये आंदोलन संकीर्ण और स्थानीय उद्देश्य रखते थे तथा उपनिवेशवाद की किसी प्रकार की उचित समझ अथवा एक वैकल्पिक समाज की किसी भी संकल्पना से रहित थे। एक ऐसी अवधारणा जो अखिल भारतीय स्तर पर एक आम संघर्ष में लोगों को संगठित कर सकती और कोई दीर्घावधि राजनीतिक आंदोलन जारी रख सकती, का अभाव था।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख किसान आंदोलनों में एक था 1859-60 की नील क्रांति। नील इंग्लैण्ड में कारखानों द्वारा उत्पादित सूती वस्त्रों के लिए एक अभिरंजक के रूप में प्रयोग की जाती थी। लगभग सभी नील-बाग़ान मालिक यूरोपियन थे और वे किसानों पर अपनी भूमि के सर्वोत्तम भाग पर नील उगाने के लिए दबाव डालते थे। अधिकांश न्यायाधीश भी यूरोपियन थे और किसी विवाद की स्थिति में वे इन बाग़ान मालिकों का ही पक्ष लिया करते थे। यह नील क्रांति 1860 तक बंगाल के सभी नील-उत्पादक जिलों पर छा गई। किसान अपने विरुद्ध दायर न्यायालिक केसों को लड़ने हेतु धन उगाहने के लिए संगठित हो गए। ये बागान मालिक संयुक्त दबाव के आगे झुक गए और अपने कारखाने बंद कर दिए। नील क्रांति में बुद्धिजीवी-वर्ग की भूमिका राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों पर दूरगामी प्रभाव डालने की थी। दीनबंधु मित्र का नाटक 'नील दर्पण' इन बाग़ान मालिकों द्वारा शोषण की अपनी विशद व्याख्या के लिए विख्यात हो गया।

1870 से 1880 के दौरान पूर्वी बंगाल के एक बड़े हिस्से में ज़मींदारों के वैध सीमाओं से परे लगान बढ़ाने के प्रयासों से उत्पन्न हुई कृषिक हलचल को देखा गया। ऐसा वे काश्तकारों को 1859 के अधिनियम-X के तहत कब्जा लेने के अधिकारों से रोकने के लिए कर रहे थे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने जबरन बेदखली और फसल अभिग्रहण जैसे अवपीड़क तरीके अपनाए। मई 1873 में, ज़मींदारों की माँगों का विरोध करने के लिए पबना जिले में एक कृषक संघ बनाया गया। काश्तकारों ने बढ़ाए गए लगान को चुकाने से इंकार कर दिया और न्यायालयों में ज़मींदारों को चुनौती देने के लिए धन उगाहया। अधिकांश विवाद अंशत: सरकारी दवाब के कारण और अंशत: ज़मींदारों को संगठित कृषिवर्ग द्वारा लम्बी खिंचती कानूनी लड़ाई में घसीटे जाने के भय से निबटा दिए गए। 1885 का बंगाल कृषिवर्ग अधिनियम ज़मींदारी व्यवस्था के निकृष्टतम पहलुओं को सम्बोधित करने का एक प्रयास था।

1875 में महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर जिले प्रमुख कृषिक उपद्रवों की रंगशालाएँ बन गए। अमेरिकन गृह-युद्ध के कारण 1860 के दशक में इन क्षेत्रों में कपास के भाव चढ़ गए। गृह-युद्ध समाप्त होते ही कपास के भाव सहसा गिरे। सरकार द्वारा लगान में पचास प्रतिशत की वृद्धि और लगातार खराब फसलों के सिलसिले ने कृषकों की मुसीबतों को और बढ़ा दिया। किसानों के पास साहूकारों की शरण में जाने के सिवा कोई चारा न रहा। साहूकारों ने इस मौके का लाभ किसानों और उनकी भूमियों पर अपनी पकड़ मजबूत करने में उठाया। किसानों ने साहूकारों को एक सम्पूर्ण सामाजिक बहिष्कार आयोजित किया। उन्होंने साहूकारों के घरों पर हमला किया और ऋण-लेखे भी जला दिए। इस उपद्रव के जवाब में, 1879 में, सरकार 'दक्कन कृषक राहत अधिनियम' ले आयी। उन्नीसवीं शताब्दी में देश के दूसरे भागों में अन्य महत्त्वपूर्ण कृषक आंदोलनों में थे – मालाबार क्षेत्र में मापिला विद्रोह और पंजाब की कूका क्रांति।

बीसवीं शताब्दी में कृषक आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी के आंदोलनों से भिन्न थे। अब कृषक आंदोलन और स्वतंत्रता संघर्ष एक-दूसरे को प्रभावित करने लगे। बीसवीं शताब्दी के दूसरे व तीसरे दशकों में तीन प्रमुख आंदोलन उद्गमित हुए : उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में किसान सभा और एका आंदोलन, मालाबार क्षेत्र में मापिला विद्रोह और गुजरात में मशहूर बारदोली सत्याग्रह। उत्तर प्रदेश में किसानों के सामने थीं बेहिसाब लगान, अवैध उदग्रहण, बेगार (बिन-भुगतान श्रम), बेदख़ली (निष्कासन) की समस्याएँ। युद्धोपरांत आवश्यक उपभोक्ता-वस्तुओं के दामों में भारी वृद्धि ने उनकी समस्याओं को और बढ़ा दिया था। उत्तर प्रदेश किसान सभा 1918 में बनी और जून 1919 तक यह इस प्रांत में 450 शाखाएँ खोल चुकी थीं। 1920 में एक वैकल्पिक अवध किसान सभा बनायी गई, जो अवध की सभी तृण-मूल किसान सभाओं को एकीकृत करने में सफल हुई। इस अवध किसान सभा ने सभी किसानों से बेदख़ली ज़मीन को जोतने से इंकार करने और बेगार न करने की अपील की। 1921 के अवध लगान अधिनियम ने इन माँगों में से कुछ को सम्बोधित करने का प्रयास किया। 1921 के अंत तक अवध के कुछ हिस्सों में एका (एकता) आंदोलन के नाम से एक दूसरा आंदोलन जन्मा। असंतोष का मुख्य कारण था कि अवध के इन क्षेत्रों में लगान अंकित लगान से पचास प्रतिशत अधिक था। सरकार द्वारा कठोर दमन से यह आंदोलन समाप्त हो गया। केरल का मालाबार क्षेत्र, जो उन्नीसवीं शताब्दी में भी गड़बड़ झेल चुका था, ने अगस्त 1921 में मापिला (मुस्लिम) कृषकों द्वारा किया गया विद्रोह देखा। नम्बूदरी ब्राह्मण भू-स्वामी मापिला किसानों का शोषण करते थे। यह विद्रोह एक सरकार-विरोधी भू-स्वामी-विरोधी कार्यवाही के रूप में शुरू हुआ लेकिन इसने साम्प्रदायिक रंग ले लिया। इसे सरकार द्वारा निर्ममतापूर्वक कुचल दिया गया। 1928-29 में कृषिवर्ग का एक अन्य महत्त्वपूर्ण संघर्ष छिड़ गया। 1926 में सूरत जिले के बारदोली तालुका में लगान में कोई तीस प्रतिशत वृद्धि की सिफ़ारिश की गई। कृषिवर्ग सरदार पटेल के कुशल नेतृत्व में लड़ा। कृषकों में संघर्ष किया और लगान-वृद्धि वापस लेने के लिए सरकार पर दवाब डाला।

1930 के दशक ने भारतीय किसानों की एक देशव्यापी जागरूकता देखी। 1920-30 की आर्थिक मंदी और तत्पश्चात् कृषि उपभोक्ता-वस्तुओं के दामों में सहसा गिरावट ने किसानों की आय को बुरी तरह प्रभावित किया। लेकिन सरकार और ज़मीदारों ने कर और लगान घटाने से इंकार कर दिया। उत्तर प्रदेश, आंध्र और बिहार में किसान आंदोलनों की एक लहर-सी चल पड़ी। जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस और कम्यूनिस्टों द्वारा प्रचारित वाम विचारधारा प्रभावमय होती जा रही थी। वामपंथियों ने किसानों के एक स्वतंत्र वर्ग संगठन की आवश्यकता पर बल दिया। 1936 में, अध्यक्ष के साथ में बिहार किसान सभा के संस्थापक सहजानन्द और सचिव के रूप में आंध्र किसान सभा के संस्थापक एन०जी० रंगा को लेकर अखिल भारतीय किसान सभा बनाई गई। सम्पूर्ण देश से किसानों की आकांक्षाओं और आम माँगों का प्रतिनिधित्व करते एक अखिल भारतीय संगठन का जन्म एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण घटना थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कृषकों, विशेष रूप से ज़मींदारी क्षेत्रों में रहने वाले काश्तकारों से संबंधित मामलों को उठाने से संकोच करती थी। विपिनचन्द्र के अनुसार कांग्रेस हमारी जनता को विभिन्न आर्थिक हितों पर आधारित राजनीतिक समूहों में बाँटकर भारतीय राष्ट्रवाद को कमज़ोर नहीं करना चाहती थी। 1930 में गाँधीजी द्वारा ब्रिटिश सरकार को पेश किए गए 'ग्यारह-सूत्र' में लगानों को घटाने व कृषिक ऋणग्रस्तता के प्रतिदान जैसी कृषकों की मुख्य माँगें शामिल नहीं थीं। अधिकांश प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के निर्माण के कृषकों की उम्मीदों को बढ़ाया। ये मंत्रिमण्डल कृषकों के लिए ऋण-राहत, मंदी के दौरान खोई भूमि का पुनर्ग्रहण और काश्तों की सुरक्षा पर अभिलक्षित अनेक विधि-विधान लेकर आए। इन कदमों ने निम्न स्तर से तादीयत्व वाले कृषकों की स्थिति को प्रभावित नहीं किया। अनेक किसान नेता गिरफ्तार किए गए और उनकी सभाओं पर प्रतिबंध लगाए गए। कांग्रेस पर कृषक-विरोधी होने का आरोप था। किसान सभा के साथ जुड़े उग्र उन्मूलनवादी तत्त्वों ने कांग्रेस पर पूँजीपतियों व ज़मींदारों के साथ चलने का आरोप लगाया।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जब स्वतंत्रता मिलती प्रतीत हुई तो किसानों ने अपने अधिकारों का दावा करना शुरू कर दिया। ज़मींदारी उन्मूलन की माँग एक अत्यावश्यकता के भाव साथ उठायी गई। तेलंगाना में कृषकों ने भू-स्वामियों के दमन का विरोध करने के लिए स्वयं को संगठित किया और निज़ाम-विरोधी संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1946 में बंगाल प्रांतीय किसान सभा ने उन बटाई काश्तकारों के आंदोलन का नेतृत्व किया जो जोतदारों को अब अपनी फसल का केवल एक-तिहाई देना चाहते थे न कि आधा भाग। इस आंदोलन को 'तिभागा आंदोलन' के रूप में जाना जाने लगा।

4.4.5 आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या बहुत कम थी। आधुनिक शिक्षा का प्रसार वृहद् ब्रिटिश सरकार का काम था। लेकिन ईसाई मिशनरियों और अनेकानेक प्रबुद्ध भारतीयों ने भी पूरे देश में स्कूलों और कालेजों की स्थापना की थी। इसी शताब्दी के लगभग मध्य में बुद्धिजीवियों के एक बड़े वर्ग का उद्गमन हुआ। इन्होंने पाश्चात्य लोकतांत्रिक संस्कृति अपनायी थी और प्रारंभिक भारतीय राष्ट्रत्व की जटिल समस्याओं को समझते थे। इन्होंने भारतीय जनता को एक आधुनिक राष्ट्र में संघटित करने हेतु अनेक सामाजिक व धार्मिक सुधार आंदोलनों का नेतृत्व किया। इस बुद्धिजीवी-वर्ग ने ही सर्वप्रथम राष्ट्रीयता चेतना उपार्जित की। वे लोग जिन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन का नेतृत्व उसके विभिन्न चरणों के दौरान किया, विभिन्न विचारधाराओं में विश्वास रखते हो सकते हैं परन्तु वे सभी एक ही वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, से सम्बन्ध रखते थे।

गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, एम.जी. रानाडे जैसे नेताओं व अन्य ने राष्ट्रवादी आंदोलन की नरम अवस्था का नेतृत्व किया। खाड़कू अवस्था में मुख्य नेता थे– अरविंद घोष के साथ-ही-साथ लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्रपाल की तिकड़ी। जब 1919 के असहयोग आंदोलन के बाद स्वतंत्रता संघर्ष को एक व्यापक आधार मिल गया, इसका नेतृत्व मोहनदास गाँधी, मोतीलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस जैसे नेताओं और समाजवादी व कम्यूनिस्ट रुझान वाले बुद्धिजीवियों के हाथों में चला गया। उनमें सभी आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की उपज थे। इस वर्ग में एक आधुनिक युक्तियुक्त, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी अभिदृष्टि की उमंग थी। वे लोकतंत्र, समानता, उदारता और न्याय के विचारों से सराबोर थे। उन्हें ब्रिटिश शासन के नकारात्मक प्रभावों का पूरी तरह से बोध था और वे भारत में ब्रिटिश हित और भारतीयों के हित के बीच प्रतिवाद को समझ सकते थे। विपिनचन्द्र के अनुसार यह सोचना गलत होगा कि राष्ट्रवादी आंदोलन ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू की गई आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज था। वास्तव में भारतीय राष्ट्रवाद भारत और ब्रिटिश के बीच हितों के टकराव के परिणामस्वरूप जन्मा था और उसी के द्वारा पोषित था। इस आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने विवाद के स्वभाव को और अच्छी तरह समझने में मदद की। यह वर्ग, जिसमें वैज्ञानिक, कविगण, इतिहासकार, अर्थशास्त्री व दार्शनिक शामिल थे, एक आधुनिक, सशक्त, सम्पन्न व संगठित भारत का सपना देखता था। उनके द्वारा अधिकांश प्रगतिशील सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक आंदोलन ब्रिटिश शासन के दौरान ही प्रवर्तित किए गए। उनकी भूमिका अतिमहत्त्वपूर्ण थी क्योंकि उन्हें अशिक्षित, ज्ञानहीन, अंधविश्वासी जन-साधारण के बीच चेतना का प्रसार करना पड़ा।

मध्यवर्ग, जिसमें वकील, डॉक्टर, पत्रकार, सरकारी कर्मचारी, छात्र व अन्य आते थे, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की ही उपज था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्कूलों व कॉलेजों की संख्या में वृद्धि के कारण उनकी संख्या भी बढ़ी। लेकिन शिक्षित भारतीयों की संख्या में वृद्धि सदृश नौकरियों की संख्या-वृद्धि से मेल नहीं खाती थी। सरकार द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियाँ नौकरियों की वह यथेष्ट संख्या पर्याप्त में असफल रहीं जिसमें शैक्षिक संस्थानों द्वारा उत्पन्न किए गए शिक्षित व्यक्ति खपाए जा सकते। इन शिक्षित बेरोजगारों के बीच असंतोष ही लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्रपाल और अरविंद की अगुवाई वाले खाड़कू राष्ट्रवाद के उदय और वृद्धि के पीछे मुख्य कारक था। यह क्रांतिकारी उग्रवादी आंदोलनों की वृद्धि के विषय में भी सत्य था।

4.4.6 पूँजीपति वर्ग

पूँजीपति वर्ग का उद्गमन भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्व-पूँजीवादी व्यवस्था हेतु खुलने, औद्योगीकरण की प्रक्रिया और बैंकिंग क्षेत्र की उत्तरोत्तर वृद्धि का परिणाम था। इस प्रकार, व्यापारिक, औद्योगिक और वित्तीय पूँजीपतियों का जन्म हुआ। भारतीय व्यापारियों, राजाओं, ज़मींदारों और साहूकारों के हाथों में पर्याप्त बचतों के संचय ने भारतीय उद्योगों के उद्गमन हेतु आधार प्रदान किया। 1850 के दशक में देश का औद्योगीकरण सूती-वस्त्र, जूट व कोयला-खनन उद्योगों के स्थापित होने के साथ ही शुरू हो गया था। परन्तु ये अधिकांश उद्योग ब्रिटिश पूँजीपतियों के स्वामित्व में थे क्योंकि कच्चे माल और सस्ती दर पर श्रमिकों की उपलब्धता की वजह से भारत में निवेश करने से उन्हें ऊँची आमदनी के आसार नज़र आते थे। इसके अलावा, वे एक उपकारी औपनिवेशिक सरकार और नौकरशाही को नहीं समझ सके। लेकिन भारतीय पूँजीपतियों को विदेशी व्यापार, सीमा-शुल्क कराधान व सरकार की परिवहन नीतियों को झेलना पड़ा। अपने शैशव में भारतीय उद्योगों को तीव्र वृद्धि हेतु संरक्षण की आवश्यकता थी। अन्य सभी औद्योगीकरण देशों ने अपने शिशु उद्योगों की रक्षा बाहरी देशों से आयात पर भारी सीमा-शुल्क थोपकर की। ब्रिटिश उद्योगों के हितों को तुष्ट करने के लिए भारत पर एक मुक्त व्यापार-नीति थोपी गई क्योंकि भारत एक स्वतंत्र देश नहीं था।

आरम्भ से ही अधिकांश सूती-वस्त्र उद्योग भारतीयों के स्वामित्व में थे। 1905 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन ने भारतीय उद्योगों के विकसन को प्रोत्साहित किया। प्रथम विश्व-युद्ध (1914-18) की अवधि भारतीय उद्योगों के लिए एक वरदान सिद्ध हुई। युद्ध-संबंधी आवश्यकताओं की ओर जहाजों का रुख हो जाने से आयात मुश्किल हो गया। अतः, युद्ध-संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक उद्योग स्थापित किए गए। 1914 से 1947 के बीच भारतीय पूँजीपति वर्ग तीव्रतर गति से पनपा और यूरोपीय उसने प्रभुत्व वाले क्षेत्रों का अतिक्रमण किया गया। स्वतंत्रता प्राप्त होने तक भारतीय पूँजीपति वर्ग के पास बाजार के लगभग सत्तर प्रतिशत का और संगठित बैंकिंग क्षेत्र में निक्षेपों के अस्सी प्रतिशत का स्वामित्व था।

1905 तक यह उदयमान पूँजीपति वर्ग नितान्त शक्तिशाली और सज्ञेत हो गया। इस वर्ग ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन का समर्थन किया क्योंकि इस आंदोलन का उद्देश्य उनके वर्ग-हित से मेल खाता था। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद तथा और सटीक रूप से 1919-20 के बाद, इस वर्ष का प्रभाव राष्ट्रवादी आंदोलन और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में बढ़ना शुरू हो गया। विपिनचन्द्र के अनुसार यह सत्य है कि कांग्रेस पूँजीपति वर्ग से धन ग्रहण करती थी पर इसके बावजूद उसने नीतिगत व सैद्धांतिक मामलों पर अपनी निरपेक्ष स्थिति बनाए रखी। ए.आर. देसाई के अनुसार, यह पूँजीपति वर्ग गाँधी जी के नेतृत्व, सामाजिक सामंजस्य के उनके सिद्धांत, वर्ग-संघर्ष के विचार पर उनके विरोध तथा विश्वस्तता की उनकी संकल्पना की वजह से ही कांग्रेस की ओर आकर्षित था।

यह पूँजीपति वर्ग औपनिवेशिक सरकार के हित उनके अपने स्वतंत्र विकास के बीच अंतर्विरोध के प्रति जागरूक था। उन्होंने अनुभव किया कि एक राष्ट्रीय सरकार ही उनके विकसन हेतु बेहतर वातावरण प्रदान करेगी। 1920 के दशक से ही भारतीय पूँजीपति भारतीय वाणिज्यिक, औद्योगिक व वित्तीय हितों का एक राष्ट्रीय स्तर का संगठन बनाने की दिशा में प्रयासरत थे। ये प्रयास 1927 में भारतीय वाणिज्य व उद्योग मंडल-संघ (FICCI) के निर्माण में परिणत हुए। यह 'फिक्की' जल्द ही व्यापार, वाणिज्य व उद्योग के राष्ट्रीय अभिभावक के रूप में पहचाना जाने लगा। इसने प्रारंभ से ही भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को अपना समर्थन देने का वचन दिया।

1930 के दशक में कांग्रेस नेहरू और समाजवादियों के नेतृत्व में उत्तरोत्तर रूप से आमूल-परिवर्तनवादी होती जा रही थी। आमूल परिवर्तनवाद के भय ने पूँजीपति वर्ग को साम्राज्यवादियों के साथ मिल जाने के लिए दबाव नहीं डाला। 1942 में पूँजीपतियों द्वारा स्थापित 'युद्धोपरांत आर्थिक विकास समिति' ने 'बम्बई प्लान' का प्रारूप तैयार किया, जिसका प्रयास था सम्पत्ति के न्यायोचित वितरण, आंशिक राष्ट्रीयकरण और भू-सुधारों जैसी समाजवादी माँगों को पूँजीवाद द्वारा उसके मौलिक अभिलक्षणों को न छोड़ते हुए समायोजित करना।

बोध प्रश्न 2

नोट :i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के उदय में शिक्षा की भूमिका पर टिप्पणी करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और भारतीय पूँजीपतियों के बीच संबंध किस स्वभाव का था?

.....

.....

.....

.....

.....

4.4.7 कामगार वर्ग

भारत में आधुनिक कामगार वर्ग का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आधुनिक उद्योगों, रेलमार्गों, डाक-तार नेटवर्क, बागानों और खनन के विकसन के साथ ही हुआ। आरंभ में यह भारतीय कामगार वर्ग अकिंचनकृत किसानों और तबाह शिल्पकारों से ही निकलकर आया। ये किसान ऊँचे भू-कर, जोतों की अपूर्णता और बढ़ती ऋणग्रस्तता के कारण दरिद्र हुए। शिल्पकारों को कामगारों की श्रेणी में शामिल होने के लिए दवाब डाला गया क्योंकि उनके उत्पाद इंग्लैण्ड से आने वाली अपेक्षाकृत सस्ती मशीन-निर्मित वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहरते थे। ये कामगार अमानवीय और अपमानजनक स्थिति में रहते थे जहाँ उनके लिए प्राधिकारियों द्वारा किए जाने वाले निम्नतम कर्त्तव्यों का भी नामोनिशां नहीं होता था। एस.वी. पारुलकर, जो 1938 में जेनेवा में हुए अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि थे, ने भारतीय कामगारों की स्थिति को वर्णन इन शब्दों में किया – "भारत में कामगारों की विशाल जनसंख्या को इतनी-सी मजदूरी मिलती है कि वह उनको जीवन की घटिया-से-घटिया अनिवार्य वस्तुएँ मुहैया कराने के लिए भी पर्याप्त नहीं है।" आर.पी. दत्त के अनुसार, 'मध्य ब्रिटिश राज के प्रबुद्ध संरक्षण में भारतीय कामगारों की गंदगी भरी स्थितियों, असीमित शोषण और अधिसेविता को बड़े उत्साहपूर्वक बनाए रखा गया।'

श्रमिक आंदोलन एक संगठित रूप में प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद ही शुरू हुए। युद्ध से पूर्व होने वाली हड़तालों व आंदोलन अधिकतर यत्रतत्रिक, साहजिक, दूरगामी लक्ष्यों के अभाव वाले, वर्ग चेतना से रहित, और स्थानीय व तत्काल शिकायतों पर आधारित होते थे। युद्धोपरांत आर्थिक संकट के कारण कामगारों की दिन-ब-दिन बिगड़ती आर्थिक स्थिति, रूस में समाजवादी क्रांति, देश में असहयोग तथा खिलाफ़त आंदोलन ने 1920 में वह पृष्ठभूमि तैयार की जिसमें मुख्यत: एन.एम. जोशी, लाला लाजपतराय और जोसेफ बैप्टिस्ट जैसे नेताओं के प्रयासों से अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस (ऐटक–A.I.T.U.C.) का जन्म हुआ। इसका कथित उद्देश्य था आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक मामलों में भारतीय श्रमिकों के हितों को बढ़ावा देने के लिए भारत के सभी प्रांतों में सभी संगठनों की गतिविधियों को समन्वित करना। 1922 में अपने गया अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 'ऐटक' के निर्माण का स्वागत किया और इसके कार्यों में मदद करने हेतु प्रमुख कांग्रेसीजनों की एक समिति बनाई। विपिनचन्द्र के अनुसार, आरंभ के राष्ट्रवादियों ने श्रमिकों की

अधम स्थिति होने के बावजूद उनके प्रश्न पर अपेक्षाकृत कम ही ध्यान दिया क्योंकि श्रमिक बनाम देशज नियोक्ता के मामलों को उठाने से साम्राज्यवाद के विरुद्ध आम संघर्ष कमज़ोर पड़ जाता। कामगारों के मुद्दों को न उठाने का एक अन्य कारण आरंभ के राष्ट्रवादियों का यह विश्वास था कि औद्योगीकरण दरिद्रता की समस्याओं को हल कर सकता है।

1920 के दशक के उत्तरार्ध में देश में विचारधारा वाली शक्तियों का दृढ़ीकरण हुआ। श्रमिक संघ आंदोलन में भी एक वामपंथी नेतृत्व विकसित हो गया। 1928 में कम्यूनिस्टवादियों समेत वामपंथ 'ऐटक' के भीतर प्रभावशाली स्थान बनाने में सफल हुआ। जोशी गुट के प्रतिनिधित्व वाला पुराना नेतृत्व अल्पमत में रह गया। इससे 'ऐटक' में दरार पड़ गई। कामगारों ने कम्यूनिस्टवादियों और उग्र राष्ट्रवादियों के प्रभाव में आकर देशभर में अनेक हड़तालों और प्रदर्शनों में भाग लिया। उन्होंने सायमन बहिष्कार प्रदर्शन में भी भाग लिया। सरकार ने लगभग समूचे उग्र उन्मूलनवादी नेतृत्व को मेरठ षड्यंत्र केस में फँसा दिया।

1937 में प्रांतीय सरकारों के लिए चुनावों से पूर्व कांग्रेस ने श्रम विवादों को निबटाने और संघ बनाने व हड़ताल पर जाने के अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु कदम उठाने का वायदा किया। कांग्रेस सरकार के तत्त्वावधान में नागरिक स्वतंत्रताएँ बढ़ गई थीं। यह बात श्रमिक संघों में आश्चर्यजनक रूप से बढ़ोत्तरी में प्रतिबिम्बित हुई। बम्बई श्रमिक विवाद अधिनियम जैसे अलोकतांत्रिक और पूँजीवाद-समर्थक विधानों के कुछ आरोप लगाए गए तथा श्रमिक सभाओं पर प्रतिबंध लगाने और श्रमिक नेताओं के बंदीकरण के मामले आए। 1939 में, जब द्वितीय विश्व-युद्ध आरंभ हुआ, बम्बई का कामगार वर्ग विश्व में सबसे पहले युद्ध-विरोधी हड़ताल करने वालों में एक था जिसमें कि 90,000 कर्मचारियों ने भाग लिया था। 1941 में सोवियत संघ पर नाज़ियों के हमले के साथ ही कम्यूनिस्टवादियों ने तर्क दिया कि युद्ध का स्वरूप साम्राज्यवादी समर से बदलकर जन-संग्राम हो गया है। उनका विचार था कि कामगार वर्ग को अब समवर्गी शक्तियों का समर्थन करना चाहिए और स्वयं को 1942 के भारत-छोड़ो आंदोलन से विलग कर लेना चाहिए। इस ओर कम्यूनिस्टवादियों की उदासीनता के बावजूद, भारत-छोड़ो आंदोलन का कामगारों पर अपना प्रभाव था। गाँधीजी व अन्य नेताओं की गिरफ़्तारी के बाद पूरे देश में हड़तालें हुईं। 1945-47 के बीच कलकत्ता में आज़ाद हिन्द फ़ौज के बन्दियों के समर्थन में हड़तालें तब हुईं जब उन पर मुकदमा चलाया जाने लगा। 1946 में नौसैनिक वर्ग की 'विद्रोहपूर्ण एकात्मकता' में बम्बई के कामगारों द्वारा हड़तालें की गईं।

भारत में नए वर्गों का उद्‌गमन एक व्यापक निहितार्थों वाली घटना सिद्ध हुआ। सामान्यत: इन वर्गों के प्रबुद्ध प्रवर्गों ने स्वतंत्रता संघर्ष को मजबूती प्रदान की लेकिन कुछ प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियाँ भी थीं। बुद्धिजीवी वर्ग के के प्रतिक्रियावादी प्रवर्ग ने विभिन्न समुदायों के बीच अविश्वास बढ़ाया जो कि सम्प्रदाय के वृद्धि में व्यक्त हुआ। ज़मींदारी का उन्मूलन ग्रामीण जन-साधारण की स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक था। भारतीय पूँजीपति वर्ग ने इस माँग का कभी समर्थन नहीं किया। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य था कि जिस वक़्त ये वर्ग स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एकजुट थे स्वतंत्रोत्तर भारत का उनका सपना, और राज्य का स्वरूप सामाजिक-आर्थिक संरचना अपसारी थे।

बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) साइमन आयोग के प्रति कामगार वर्ग का क्या रवैया था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कामगार वर्ग के प्रति कांग्रेस के नेतृत्व वाली प्रांतीय सरकारों का क्या रवैया था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 सारांश

औपनिवेशिक काल के दौरान भारत में अनेक नए वर्ग उद्गमित हुए। इनमें शामिल थे – ग्रामीण क्षेत्रों में ज़मींदार, काश्तकार, भूमिधारी, साहूकार और कृषि श्रमिक, और शहरों में पूँजीपति, आधुनिक बुद्धिजीवी और कामगार वर्ग। वे पूँजीवादी व्यवस्था के विकास, नए प्रशासनिक ढाँचे और शिक्षा-प्रणाली के परिणामस्वरूप जन्में। इन वर्गों ने अपनी-अपनी स्थिति और हितों पर निर्भर रहते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में भूमिकाएँ अदा कीं।

4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चन्द्रा, बिपन, व अन्य कॅलोनिअलिज़्म, *फ्रीडम स्ट्रगल एण्ड नैशनलिज़्म इन् इण्डिया*, दिल्ली।

दत्त, आर०पी०, *इण्डिया टुडे*, कलकत्ता, 1970।

देसाई, ए०आर०, *सोशल बैकग्राउंड ऑव इण्डियन नैशनलिज़्म*, बम्बई, 1976।

मिश्रा, बी०बी०, *दि इण्डियन मिडिल क्लास*, लंदन, 1961।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) पूँजीपति व्यवस्था, नया प्रशासनिक ढाँचा और एक आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का आविर्भाव।

2) एक वफ़ादार वर्ग के निर्माण द्वारा अपने हितों की रक्षा करना, जो उन्हें भारत पर शासन करने के लिए राजस्व व अन्य प्रकार का समर्थन दिला सके।

3) लगान बढ़ाकर, भूमि के बेदख़ली और शारीरिक उत्पीड़न।

बोध प्रश्न 2

1) इसने बुद्धिवाद, समानता, लोकतंत्र के विचारों का अन्तर्निवेशन किया।

2) भारतीय पूँजीपति वर्ग कांग्रेस को धन देता था, वे कांग्रेस के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करते थे।

बोध प्रश्न 3

1) उन्होंने इसका विरोध किया।

2) कांग्रेस सरकारों ने श्रम-विवादों को निबटाने, और कामगार वर्ग के अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु कदम उठाए। बहरहाल, बम्बई जैसे प्रान्तों में इसने श्रमिक-वर्ग-विरोधी कदम उठाए।